गंगा मैया
भाग 3

भैरव प्रसाद गुप्त

गंगा मैया
भाग 3

सात

बनारस जिला जेल पहुँचते ही मटरू की साँस की बीमारी उखड़ गयी। तीन-चार दिन तक तो किसी ने उसकी परवाह न की, पर जब वह बिल्कुल लस्त पड़ गया, कोई काम करने के काबिल न रहा, तो उसे अस्पताल में पहुँचा दिया गया। उसका बिस्तर ठीक गोपी की बगल में था।

डाक्टर किसी दिन आता, किसी दिन न आता। विशेषकर कम्पाउण्डर ही सब-कुछ करता-धरता। वह बड़ा ही नेक आदमी था, उसकी सेवा सुश्रुषा से ही मरीज आधे अच्छे हो जाते थे। फिर यहाँ खाना भी कुछ अच्छा मिलता था, थोड़ा दूध भी मिल जाता था, मशक्कत से छुटकारा भी मिल जाता था। यही सुविधा प्राप्त करने के लिए बहुत से तन्दुरुस्त कैदी भी अस्पताल में पड़े रहते। इसके लिए डाक्टर की और वार्डर की मुट्ठी थोड़ी गरम कर देनी पड़ती थी। जाहिर है कि ऐसा खुशहाल कैदी ही कर सकते थे।

एक हफ्ते तक मटरू बेहाल पड़ा रहा। वह सूखी खाँसी खाँसता और पीड़ा के मारे 'आह-आह' किया करता। बलगम सूख गया था। कम्पाउण्डर बड़ी रात गये तक उसके सीने और पीठ पर दवा की मालिश करता। वह अपनी छुट्टी की परवाह न करता।

कई इंजेक्शन लगने के बाद जब कफ कुछ ढीला हुआ, तो मटरू को कुछ आराम मिला। अब वह घण्टों सोया पड़ा रहता। सोये-सोये ही कभी-कभी वह "माँ-माँ" चीखता, उठकर बैठ जाता और चारों ओर आँखें फाड़-फाडक़र देखने लगता।

एक दिन ऐसे ही मौके पर गोपी ने पूछा, "माँ, तुम्हें बहुत याद आती है?"

"हाँ", मटरू ने जैसे दूर देखते हुए कहा, "वह रात-दिन मुझे पुकारा करती है- जब तक मैं उसके पास न पहुँच जाऊँगा, चैन न मिलेगा। जब तक उसका पानी और हवा मुझे न मिलेगी, मैं निरोग न होऊँगा।"

गोपी ने अचकचाकर कहा, "माँ से पानी-हवा का क्या मतलब? तुम... "

"तुम कहाँ के रहने वाले हो?" मटरू ने जरा मुस्कराकर पूछा, "मटरू सिंह पहलवान का नाम नहीं सुना है? उसकी माँ गंगा मैया है, यह बात कौन नहीं जानता!"

"मटरू उस्ताद!" गोपी आँखें फैलाकर चीख पड़ा, "पा लागी! मैं गोपी हूँ, भैया, भला मुझे तुम क्या जानते होगे?"

"जानता हूँ, गोपी, सब जानता हूँ। मैं उस दंगल में भी शामिल था और फिर जो वारदात हो गयी थी, उसके बारे में भी सुना था। क्या बताऊँ, कोई किसी का बल नहीं देख पाता। जब किसी तरह कोई पार नहीं पाता, तो कमीनेपन पर उतर आता है। तुम्हारे भाई की वह हालत हुई, तुम्हें जेल में डाल दिया गया। मेरा भी तो सुना ही होगा। कमीने से और कुछ करते न बना, तो जाने क्या खिला दिया। साँस ही उखड़ गयी। शरीर मिट्टी हो गया। देख रहे हो न?"

"हाँ, सो तो आँखों के सामने है," दुखपूर्ण स्वर में गोपी ने कहा, "फिर यहाँ कैसे आना हुआ, भैया?"

मटरू हँस पड़ा। बोला, "वही, ज़मींदारों से मेरी वह ज़िन्दगी भी न देखी गयी। डाके में फाँसकर यहाँ भेज दिया।" कहकर वह पूरी कहानी सुना गया। अन्त में बोला, "क्या बताऊँ, सब सह सकता हूँ, लेकिन गंगा मैया का बिछोह नहीं सहा जाता। आँखों के सामने जब तक वह धारा नहीं रहती, मुझे चैन नहीं मिलता, कुछ करने को उत्साह नहीं रहता। वह हवा, वह पानी, वह मिट्टी कहाँ मिलने की? जब से बिछड़ा हूँ, भर-पेट पानी नहीं पिया। रुचता ही नहीं, भैया, क्या करूँ? जाने कैसे कटेंगे तीन साल?"

"मुझे तो पाँच साल काटना है, भैया! मर्द के लिए कहीं भी वक़्त काटना मुश्किल नहीं, लेकिन दिल में एक पीर लिये कोई कैसे वक़्त काटे! मुझे विधवा भाभी का ख्याल खाये जाता है, और तुम्हें गंगा मैया का। एक-न-एक दुख सबके पीछे लगा रहता है। फिर भी वक़्त तो कटेगा ही, चाहे दुख से कटे, चाहे सुख से- अब तो हम एक जगह के दो आदमी हो गये। दुख-सुख ही कह-सुनकर मज़े से काट लेंगे। सुना था, तुमने शादी कर ली थी?"

"हाँ, अब तो तीन बाल-गोपाल भी घर आ गये हैं। बड़े मजे से ज़िन्दगी कट रही थी, भैया! हर साल पचास-सौ बीघा जोत-बो लेता था। गंगा मैया इतना दे देती थीं कि खाये ख़तम न हो- लेकिन ज़मींदारों से यह देखा न गया। गंगा मैया की धरती पर भी उन्होंने अनाचार करना शुरू कर दिया। अन्याय देखा न गया, भैया मर्द होकर माँ की छाती पर मूँग दलते देखूँ, यह कैसे होता!"

"तुमने जो किया, ठीक ही किया, भैया! ये ज़मींदार इतने हरामी होते हैं कि किसान का जरा भी सुख इनसे नहीं देखा जाता। तुम्हें वहाँ से हटाकर अब मनमानी करेंगे। लोभी किसानों ने जो तुम्हारे रहने पर न किया, उनसे वे अब सब करा लेंगे। तुम्हारा कोई साथी वहाँ होगा नहीं, जो रोकथाम करे?"

"एक साला है तो। मगर उसमें वह हिम्मत नहीं है। फिर भी वह चुपचाप न बैठेगा। थोड़े दिन की मेरी शागिर्दी का असर उस पर कुछ-न-कुछ पड़ा ही होगा। देखना है।"

"वह तुमने मिलने आएगा न, पूछना।"

धीरे-धीरे मटरू और गोपी का सम्बन्ध गहरा हो गया। दोनों के समान स्वभाव, समान दुख, समान जीवन ने उन्हें अन्तरंग बना दिया। उनका जीवन अब एक-दूसरे के साथ-सहारे से कुछ मजे में कटने लगा। एक ही बैरक में वे रहते थे। जहाँ तक काम का सम्बन्ध था, उनसे किसी को कोई शिकायत न थी। इसलिए किसी अधिकारी को उन्हें छेडऩे की जरूरत न थी। मटरू की "गंगा मैया" जेल-भर में मशहूर हो गयीं। उन्हें छोटे-बड़े बहुत ही अधिक धार्मिक आदमी समझते और जब मिलते, "जय गंगा मैया" कहकर जुहार करते। एक तरह की ज़िन्दगी उन दीवारों के अन्दर भी पैदा हो गयी। हँसी-दिल्लगी, लडऩा-झगडऩा, ईर्ष्या-द्वेष, रोना-गाना; वहाँ भी तो वैसा ही चलता है, जैसे बाहर। कब तक कोई वहाँ के समाजी जीवन से कटा-हटा, अलग-अकेले पड़ा रहे? सैकड़ों के साथ सुख-दुख में घुल-मिलकर रहने में भी तो आदमी को एक सन्तोष मिल जाता है।

अब मटरू और गोपी के बीच कभी-कभी जेल के बाहर भी साथ ही रहने-सहने की बात उठ पड़ती। दोनों में इतनी घनिष्ठता हो गयी थी कि जुदाई का ख़याल करके भी वे बेचैन हो उठते। मटरू कहता, "जेल से छूटकर तुम भी मेरे साथ रहो, तो कैसा? गंगा मैया के पानी, हवा और मिट्टी का चस्का तुम्हें एक बार लग भर जाए, फिर तो मेरे भगाने पर भी तुम न जाओगे। फिर मुझे तुम्हारे-जैसे एक साथी की ज़रूरत भी है। ज़मींदर अब जोर ज़बरदस्ती पर उतर आये हैं। न जाने मुझे वहाँ से हटाने के बाद उन्होंने क्या-क्या किया हो। लौटने पर फिर वे मुझसे भिड़ेंगे। अब उनका मुकाबिला करना है। जवार के किसान इस बीच फूट न गये, तो मेरा साथ देंगे। मैं चाहता हूँ कि गंगा मैया की छाती पर मेंड़ें न खिंचें। मेंड़ें खिंचना असम्भव भी है, क्योंकि गंगा मैया की धारा हर साल सब-कुछ बराबर कर देती है। कोई निशान वहाँ कायम नहीं रह सकता है। मैया केज़मीन छोडऩे पर जो जितनी चाहे, जोते-बोये। ज़मीन की वहाँ कभी कोई कमी न होगी, जोतने वालों की कमी भले ही हो जाए। वहाँ सबका बराबर अधिकार रहे। ज़मींदार उसे हड़पकर वहाँ अपनी जमींदारी कायम करके लगान वसूल करना चाहते हैं, वही मुझे पसन्द नहीं। गंगा मैया भी क्या किसी की जमींदारी में हैं, गोपी?"

"नहीं भैया, यह तो सरासर उनका अन्याय है। ऐसा करके तो एक दिन वे यह भी कह सकते हैं कि गंगा मैया का पानी भी उनका है, जो पीना-नहाना चाहे, कर चुकाए?"

"हाँ, सुनने में तो यह भी आया था कि घाट को वे ठेके पर उठाना चाहते हैं। कहते हैं, घाट उनकी ज़मीन पर है। वहाँ से जो पार-उतराई खेवा मिलता है, उसमें भी उनका हक है। मेरे रहते तो वहाँ किसी की हिम्मत ऐसा करने की नहीं हुई। अब मेरे पीछे जाने उन्होंने क्या-क्या किया हो। सो, भैया, वहाँ एक मोर्चा बनाकर इस अन्याय का मुकाबिला करना ही पड़ेगा। अगर तुम मेरे साथ हो, तो मेरा बल दूना हो जाएगा।"

"सो तो मैं भी चाहता हूँ। लेकिन तुम्हें तो मालूम है कि घर में मैं ही अकेला बच गया हूँ। बाबू को गँठिया ने अपाहिज बना दिया है। बूढ़ी माँ और विधवा भाभी का भार भी मेरे ही सिर पर है। ऐसे में घर कैसे छोड़ा जा सकता है? हाँ, कभी-कभार तुम्हें सौ-पचास लाठी की जरूरत हुई; तो ज़रूर मदद करूँगा। तुम्हारे इत्तला देने भर की देर रहेगी। यों, दो-चार दिन आ-ठहरकर गंगा मैया का जल-सेवन ज़रूर साल में दो-चार बार करूँगा। तुम भी आते जाते रहना। यों, सर-समाचार तो बराबर मिलता ही रहेगा।

मटरू उदास हो जाता। वह सचमुच गोपी पर जान देने लगा था। लेकिन उसके घर की ऐसी परिस्थिति जानकर भी वह कैसे अपनी बात पर जोर देता? वह कहता, "अच्छा, जैसे भी हो, हमारी दोस्ती कायम रहे, इसकी हमें बराबर कोशिश करनी चाहिये!"

इधर बहुत दिनों से मटरू या गोपी की मिलाई पर कोई नहीं आया था। दोनों चिन्तित थे। दूर देहात से कामकाजी किसानों का बनारस आना-जाना कोई मामूली बात न थी। ज़िन्दगी में बहुत हुआ तो सालों से इन्तजाम करने के बाद वे एक बार काशी-प्रयाग का तीरथ करने निकल पाते हैं। उनके पास कोई चहबच्चा तो होता नहीं कि जब हुआ निकल पड़े, घूम आये। फिर उन्हें फुरसत भी कब मिलती है? एक दिन भी काम करना छोड़ दें, तो खाएँ क्या? और खाने को हो तो भी बटोरने और खेत खरीदने की लालसा से उन्हें छुटकारा कैसे मिले?

गोपी के ससुर पहले दो-दो, तीन-तीन महीने पर एक बार आ जाते थे। लेकिन जब से एक बेटी विधवा हो गयी थी और दूसरी चल बसी थी, उनकी दिलचस्पी बिल्कुल ख़तम हो गयी थी। खामखाह की दिलचस्पी के न वह कायल थे, न उसे पालने की उनकी हैसियत ही थी। दूसरा कौन आता।

मटरू के ससुर बिलकुल मामूली आदमी थे। ज़िन्दगी में कभी बाहर जाने का उन्हें अवसर ही न मिला था। हाँ, साले से कुछ उम्मीद ज़रूर थी। लेकिन वह भी जाने किस उलझन में फँसा है, जो एक बार भी ख़बर लेने न आया।

अगले महीने में चन्द्रग्रहण पड़ रहा था। मटरू और गोपी को पूरा विश्वास था कि इस अवसर पर ज़रूर कोई-न-कोई मिलने आएगा। ग्रहण में काशी-नहान का बड़ा महत्व है। एक पन्थ, दो काज।

ग्रहण के एक दिन पहले इतवार था। सुबह से ही मिलाई की धूम मची थी। जिन कैदियों की मिलाई होने वाली थी, उनके नाम वार्डर पुकार रहे थे और फाटक के पास सहन में बैठा रहे थे। जिसका नाम पुकारा जाता, उसका चेहरा खिल जाता, जिसका नाम न पुकारा जाता, वह उदास हो जाता। सहन से एक खुशी का शोर-सा उठ रहा था।

मटरू और गोपी आँखों में उदास हसरत लिये बैरक के बाहर खड़े थे। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि आज कोई-न-कोई उनसे मिलने ज़रूर आएगा। लेकिन जब सब पुकारें ख़तम हो गयीं और उनका नाम न आया तो उनकी आँखों में हसरत मूक रुदन करके मिट गयी।

"देखो न," थोड़ी देर बाद गोपी जैसे रोकर बोला, "आज भी कोई नहीं आया।"

"हाँ," उसाँस लेता मटरू बोला, "गंगा मैया की मरजी..."

तभी उनके वार्डर ने भागते हुए आकर कहा, "चलो, चलो, गंगा पहलवान, तुम्हारी मिलाई आयी है! जल्दी करो, पन्द्रह मिनट ऐसे ही बीत गये।"

मटरू ने सुना, तो उसका चेहरा खिल उठा। तभी गोपी ने वार्डर से पूछा, "मेरी मिलाई नहीं आयी है, वार्डर साहब?"

"नहीं, भाई नहीं। आता तो बताता नहीं?" वार्डर ने कहा, "गंगा पहलवान की आयी है। हम तो समझते थे कि इनके गंगा मैया के सिवा कोई है ही नहीं, मगर आज मालूम हुआ कि..."

"मेरे साथ गोपी भी चलेगा!" मटरू ने उदास होकर कहा, "यह भी तो मेरा रिश्तेदार है।"

"जेलर साहब के हुक्म के बिना यह कैसे हो सकता है? चलो, देर करके वक़्त ख़राब न करो!" वार्डर ने मजबूरी जाहिर की।

"अरे वार्डर साहब, इतने दिनों बाद तो कोई मिलने आया है, कौन कोई महीने-महीने आने वाला है हमारा? मेहरबानी कर दो! हमारे लिए तो तुम्हीं जेलर हो!" मटरू ने विनती की।

"मुश्किल है, पहलवान! वरना तुम्हारी बात खाली न जाने देता। चलो, जल्दी करो। मिलने वाले इन्तजार कर रहे हैं!" वार्डर ने जल्दी मचायी।

"जाओ, भैया, मिल आओ। हमारी ओर का भी सर-समाचार पूछ लेना। क्यों मेरी खातिर..."

"तुम चुप रहो!" मटरू ने झिडक़कर कहा, वार्डर साहब चाहें तो सब कर सकते हैं, मैं तो यही जानूँ!" कहकर मटरू वार्डर की ओर बड़ी दयनीय आँखों से देखकर बोला, "वार्डर साहब, इतने दिन हो गये यहाँ रहते, कभी आप से कुछ न कहा। आज मेरी विनती सुन लो! गंगा मैया तुम्हें बेटा देंगी!"

वार्डर निपूता था। कैदी उसे बेटा होने की दुआ करके उससे बहुत-कुछ करा लेते थे। यह उसकी बहुत बड़ी कमज़ोरी थी। वह हमेशा यही सोचता, जाने किसकी जीभ से भगवान् बोल पड़े। वह धर्म-संकट में पडक़र बोल पड़ा, "अच्छा, देखता हूँ। तुम तो चलो, या मेरी शामत बुलाओगे?"

"नहीं, वार्डर साहब, बात पक्की कहिए! वरना मैं भी न जाऊँगा। अब तक कोई न मिलने आया, तो क्या मैं मर गया? गंगा मैया..."

"अच्छा, भाई, अच्छा। तुम चलो। मैं अभी मौका देखकर इसे भी पहुँचा देता हूँ। तुम लोग तो एक दिन मेरी नौकरी लेकर ही दम लोगे!" कहकर वह आगे बढ़ा।

मटरू ससुर का पैर छू चुका, तो साला उसका पैर छूकर उससे लिपट गया। बैठकर अभी सर-समाचार शुरू ही किया था कि जाने किधर से गोपी भी धीरे से आकर उनके पास बैठ गया। मटरू ने कहा, "यह हरदिया का गोपी है। वही गोपी-मानिक! सुना है न नाम?"

"हाँ-हाँ!" दोनों बोल पड़े।

"यह भी यहाँ मेरे ही साथ है। इनके घर का कोई सर-समाचार?" मटरू ने पहले दोस्त की ही बात पूछी।

"सब ठीक ही होगा। कोई खास बात होती, तो सुनने में आती न?" बूढ़े ने कहा, "अच्छा है, अपने जवार के तुम दो आदमी साथ हो। परदेश में अपने जर-जवार के एक आदमी से बढक़र कुछ नहीं होता।"

"अच्छा, पूजन," मटरू ने साले की ओर मुखातिब होकर कहा, "तू दीयर का हाल-चाल बता। गंगा मैया की धारा वहीं बह रही है, या कुछ इधर-उधर हटी है?"

"इस साल तो पाहुन, धारा बहुत दूर हटकर बह रही है; जहाँ हमारी झोंपड़ी थी न, उससे आध कोस और आगे। इतनी बढिय़ा चिकनी मिट्टी अबकी निकली है, पाहुन, कि तुम देखते तो निहाल हो जाते! इस साल फसल बोयी जाती, तो कट्टा पीछे पाँच मन रब्बी होती। मैं तो हाथ मलकर रह गया। ज़मींदारों ने पश्चिम की ओर कुछ जोता-बोया है। उनकी फसल देखकर साँप लोट जाता है।"

"किसानों ने भी..."

"नहीं, पाहुन, ज़मींदारों ने चढ़ाने की तो बहुत कोशिश की, लेकिन तुम्हारे डर से कोई तैयार नहीं हुआ। ज़मींदारों की भी फसल को भला मैं बचने दूँगा। देखो तो क्या होता है! सब तिरवाही के किसान खार खाये हुए हैं। तुम्हारे जेल होने का सबको सदमा है। पुलिसवालों ने भी मामूली तंग नहीं किया है। जरा तुम छूट तो आओ, फिर देखेंगे कि कैसे किसी ज़मींदार के बाप की हिम्मत वहाँ पैर रखने की होती है। सब तैयारी हो रही है, पाहुन!"

"शाबाश!" मटरू ने पूजन की पीठ ठोंककर कहा, "तू तो बड़ा शातिर निकला रे! मैं तो समझता था कि तू बड़ा डरपोक है।"

"गंगा मैया का पानी पीकर और मिट्टी देह में लगाकर भी क्या कोई डरपोक रह सकता है, पाहुन? तुम आना तो देखना! एक दाना भी ज़मींदारों के घर गया तो, गंगा मैया की धार में डूबकर जान दे दूँगा! हाँ!"

"अच्छा-अच्छा और सब समाचार कह। बाबूजी को इस सरदी-पाले में काहे को लेता आया?" मटरू ने सन्तुष्ट होकर पूछा।

"माई नहीं मानी! गरहन का स्नान इसी हीले हो जाएगा। विश्वनाथजी का दर्शन कर लेंगे। ज़िन्दगी में एक तीरथ तो हो जाए। अब तुम अपनी कहो। देह तो हरक गयी है।"

"कोई बात नहीं। गंगा मैया की कृपा से सब अच्छा ही कट रहा है। तुम सब ख़याल रखना। ज़मींदारों के पंजे में किसान न फँसें, ऐसी कोशिश करना। फिर तो आकर मैं देख लूँगा। और सब तुम्हारी ओर फसल का क्या हाल-चाल है? ऊख कितनी बोयी है?"

"एक पानी पड़ गया तो फसल अच्छी हो जाएगी। उगी तो बहुत अच्छी थी, लेकिन जब तक रामजी न सींचे, आदमी के सींचने से क्या होता है? ऊख बोयी है दो बीघा। अच्छी उपज है। किसी बात की चिन्ता नहीं। अभी दीयर का भी कुछ अनाज बखार में पड़ा है।"

"बाबू सब कैसे हैं?" मटरू ने लडक़ों के बारे में पूछा।

"बड़े को स्कूल भेज रहा हूँ। उसे ज़रूर-ज़रूर पढ़ाना है, पाहुन! कम-से-कम एक आदमी का घर में पढ़ा-लिखा होना बहुत ज़रूरी है। पटवारी-ज़मींदार जो कर-कानून की बहुत बघारते हैं, उसका ज्ञान हासिल किये बिना उनका जवाब नहीं दिया जा सकता। अपढ़-गँवार समझकर वे हर कदम पर हमें बेवकूफ बनाकर मूसते हैं। हम अन्धों की तरह हकबक होकर उनका मुँह ताकते रहते हैं। दीयर के बारे में भी उन्होंने कोई कानून निकाला है। कहते हैं कि जिनका हक जंगल पर था, उन्हीं का ज़मीन पर भी है। पाहुन, अपनी जोर-ज़बरदस्ती से ही तो वे जंगल कटवाकर बेचते थे। उनका क्या कोई सचमुच का हक उस पर था! पूछने पर कहते हैं, तुम कानून की बात क्या जानो! बड़े आये हैं, कानून बघारने वाले देखेंगे, कैसे फसल काटकर घर ले जाते हैं! हल की मुठिया तो पकड़ी नहीं, मशक्कत कभी उठायी नहीं, फिर किस हक से उसको फसल मिलनी चाहिए? जिन हलवाहों ने मेहनत की, उन्हीं का तो उस पर हक है! और, पाहुन हमने तय कर लिया है कि यह फसल उन्हीं के घर जाएगी!"

"ठीक है, ठीक है! अरे हाँ, कुछ खाने-पीने की चीज़ नहीं लाया? सत्तू खाने को बहुत दिन से जी कर रहा था।" मटरू ने हँसकर कहा।

"लाया हूँ, पाहुन थोड़ा सत्तू भी है, नया गुड़ और चिउड़ा भी है। बाहर फाटक पर धरा लिया है। कहता था, पहुँच जाएगा। तुम्हें मिल जाएगा न पाहुन?" पूजन ने अपना सन्देह दूर करना चाहा। फाटक पर वह जमा नहीं करना चाहता था। कहता था, खुद अपने हाथ से देगा। अधिकारी ने कानून-कायदे की बात की, तो कुछ न समझकर भी जमा कर दिया था।

"हाँ, आधा-तिहा तो मिल ही जाएगा।"

"और बाकी?" पूजन ने आश्चर्य से पूछा।

"बाकी कायदे-कानून की पेट में चला जाएगा!" कहकर वह जोर से हँस पड़ा। बूढ़े और पूजन उसका मुँह ताकते रहे। वह फिर बोला, "अबकी आना, तो गोपी के घर का समाचार लाना न भूलना।"

"आऊँगा तो ज़रूर लाऊँगा। मगर, पाहुन, आना अब मुश्किल मालूम पड़ता है। फुरसत मिलती कहाँ है? और फिर तुम लोग तो मजे से ही हो।" पूजन ने विवशता जाहिर की।

"फिर भी कोशिश करना। सर-समाचार मिलता रहता है, तो और किसी बात की चिन्ता नहीं रहती..."

मिलाई ख़तम होने की घण्टी बज उठी। हँसते हुए आने वाले चेहरे अब उदास होकर भारी दिल लिये लौटने लगे। कोई सिसक रहा था, कोई आँखें साफ कर रहा था, कोई नाक छिनक रहा था, किसी के मुँह से कोई बोल न फूट रहा था। पलट-पलटकर वे फाटक की ओर अपनी ही ओर मुड़-मुडक़र देखते हुए जाते अपने सम्बन्धियों को हसरत-भरी नज़रों से देख रहे थे।

आठ

दो बरस बीतते-बीतते गोपी के यहाँ मेहमानों का आना-जाना शुरू हो गया। गोपी अभी जेल में है, उसके छूटने के करीब दो साल की देर है, यह जानकर भी वे मेहमान न मानते। वे सत्याग्रहियों की तरह धरना डाल देते। अपाहिज बाप से वे विनती करते कि तिलक ले लें। गोपी के छूटकर आने पर शादी हो जाएगी।

वे दिन माँ की खुशी के होते। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर खुशी की आभा छा जाती। वह दौड़-धूपकर मेहमानों के खातिर-तवाजे का इन्तज़ाम करती। बहू को आदेश देती, यह कर, वह कर। लेकिन भाभी के ये दिन बड़ी अन्यमनस्कता के होते। एक झुँझलाहट के साथ वह काम करती। चेहरा एक गुस्से से तमतमाया रहता। आँखों से चिनगियाँ छूटा करतीं। सास से कभी सीधे मुँह बात न करती। बरतन-भाँड़े को इधर-उधर पटक देती। कभी-कभी दबी जबान से यह भी कहती, "अभी जल्दी क्या है? उसे छूट तो आने दो।" तब सास फटकार देती, "उसके आने-न-आने से क्या होता है? शादी तो करनी ही है। ठीक हो जाएगी, तो होती रहेगी। बूढ़े की ज़िन्दगी का क्या ठिकाना है! उनके रहते ठीक तो हो जाए।"

भाभी सुनती तो उसके दिल-दिमाग में एक हैवान-सा उठ खड़ा होता। सारा शरीर जैसे एक विवश क्रोध से फुँक उठता। आते-जाते पैर ज़मीन पर पटकती, मानों सारी दुनिया को चूर-चूर कर देगी। होंठ बिचक जाते, नथुने फूल उठते और जाने पागलों-सी क्या-क्या भुनभुनाती रहती।

सास यह सब देखती, तो भुन्नास होकर कहती, "तेरे ये सब लच्छन अच्छे नहीं है! मुझे दिमाग दिखाती है! जो भगवान के घर से लेकर आयी थी, वही तो सामने पड़ा है। चाहे रोकर भोग, चाहे हँसकर, इससे निस्तार नहीं! भले से रहेगी, तो दो रोटी मिलती रहेगी। नहीं तो किसी घाट की न रहेगी, सब तेरे मुँह पर थूकेंगे!"

"थूकेंगे क्या?" भाभी जल-भुनकर कह उठती, "बाप-भाई मर गये हैं क्या? उनके कहने से न गयी, उसी का तो यह नतीजा भुगत रही हूँ! जहाँ जाँगर तोड़ूँगी वहीं दो रोटी मिलेगी! रोएँ वे, जिनके जाँगर टूट गये हों।"

अपने और अपने मर्द पर फब्ती सुनकर सास जल-भुनकर कोयला होकर चीख पड़ती, "अच्छा! तो चार दिन से जो तू कुछ करने-धरने लगी है, उसी से तेरा दिमाग इतना चढ़ गया है? तू क्या समझती है मुझे? किसी के हाथ का पानी पीने वाले कोई और होंगे! मुझसे तू बढ़-चढ़ के बातें न कर! मेरे हाथ अभी टूट नहीं गये हैं! तू जो भाई-बाप पर इतरायी रहती है, तो वहाँ जाकर भी देख ले! करमजलियों को कहीं ठिकाना नहीं मिलता! अभी तुझे क्या मालूम है? आटे-दाल का भाव मालूम होगा, तब समझेगी कि कोई क्या कहती थी! मैं इस बूढ़े के रोग से मजबूर हूँ, नहीं तो देखती कि तू कैसे एक बात जबान से निकाल लेती है!"

इस रगड़े का आख़िरी नतीजा यह होता कि या तो भाभी अपने करम को कोस-कोसकर रोने लगती या सास। बूढ़े सुनते, तो बड़बड़ाने लगते, "हे भगवान इस शरीर को उठा लो! रोज-रोज की यह कलह नहीं सही जाती।"

मोहल्लेवालों को इस घर से अब कोई दिलचस्पी न रह गयी थी। रोज-रोज की बात हो गयी थी। कोई कहाँ तक खोज-ख़बर ले? हाँ, औरतों को ज़रूर कुछ दिलचस्पी थी। रोना सुनकर कोई आ जाती, तो भाभी को समझाती-बुझाती, "अब तुम्हें गम खाकर रहना चाहिए। कौन सास दो बातें बहू को नहीं कहती? सास-ससुर की सेवा ही करके तो तुम्हें ज़िन्दगी काटनी है। इनसे कलह बेसहकर तुम कहाँ जाओगी? भाई-बाप जन्म के ही साथी होते हैं, करम के साथी नहीं। करम फूटने पर अपने भी पराये हो जाते हैं।" सास सुनती तो बड़ी निरीह बनकर कहती, "कोई पूछे तो इससे कि मैंने क्या कहा है? तुम, सब तो जानती ही हो कि भला मैं कुछ बोलती हूँ। एक जवान बेटा उठ गया, दूसरा

जेल में पड़ा है, वह हैं तो सालों से चारपाई तोड़ रहे हैं। मुझे क्या किसी बात का होश है? अरे, वह तो पापी प्राण हैं, कि निकलते नहीं। करम में साँसत सहनी लिखी है, तो सुख से कैसे मर जाऊँ?" सास कहने को तो सब-कुछ भाभी से कह जाती, लेकिन वह जानती थी कि कहीं वह सचमुच अपने बाप के यहाँ चली गयी, तो मुश्किल हो जाएगी। कौन सँभालेगा घर-द्वार? उसका तो हाथ-पाँव हिलना मुश्किल था। सो, बात को सँवारने की गरज से कहती, "कौन गल्ला काम है? तीन प्राणी की रसोई बनाना, खाना और खिलाना। यही तो! उस पर भी मुझसे जो बन पड़ता है, कर ही देती हूँ। अब कोई मुझसे पूछे कि इतना भी न होगा, तो क्या होगा? कोई राजा-महाराजा तो हम हैं नहीं कि बैठकर खाएँ और खिलाएँ। ऐसा करने से भला हमा-सुमा का गुज़र होगा?"

"नहीं, बहू, नहीं, तुझे समझना चाहिए कि सास जो कहती है, तेरे भले ही के लिए कहती है। जाँगर चुराने की आदत तुझे नहीं डालनी चाहिए। बर-बेवा का मान काम से ही होता है, चाम से नहीं।" वह औरत कहती, "भगवान न करे, कहीं ऐसा वक़्त आ पड़े, तो कहीं कूट-पीसकर उमर तो काट लेगी।"

भाभी के कानों में ये बातें गरम सीसे की तरह सारा तन-मन जलाती चली जातीं। लेकिन वह कुछ न बोलती। गैर के सामने मुँह खोले, ऐसा दुस्साहस उसमें न था। वह चुपचाप बस बुलके चुआती रहती और उसाँसें भरा करती। वह भी कहने को बाप के घर चली जाने की धमकी जरूर दे देती थी, लेकिन सच तो यह था कि वह कहीं भी जाना न चाहती थी। उसके मन में जाने कैसे एक आशा बैठ गयी थी कि देवर के आने पर शायद कुछ हो।

यह सास-भाभी की अपनी-अपनी गरजमन्दी ही थी कि लड़-झगडक़र भी वे फिर मिल-जुल जातीं। झगड़े के दिन कभी सास रूठकर खाना न खाती, तो उसे भाभी मना लेती और भाभी न खाती तो उसे सास मना लेती।

ससुर को अपनी खिदमत चाहिए थी। उन्हें वह मिल जाया करती थी। भाभी अपनी सेवा से उन्हें खुश रखना चाहती थी। बूढ़े उससे खुश भी रहते थे, क्योंकि वैसी सेवा उनकी औरत से सम्भव न थी। वह भाभी का पक्ष भी गाहे-बे-गाहे ले लेते थे। वह गोपी के लिए आने वाले रिश्तों के बारे में भी उससे बातें करते थे और राय माँगते थे। ऐसे अवसर पर वह बड़े ढंग से कह देती, "रिश्ता तो बुरा नहीं, लेकिन आदमी बराबर का नहीं है। लोग कहेंगे कि पहली शादी अच्छी जगह की और दूसरी बार कहाँ जा गिरे।"

बूढ़े एक गर्व का अनुभव करके कहते, "सो तो तू ठीक ही कहती है, बहू। सौ जगह इनकार करने के बाद मैंने वह शादियाँ की थीं। क्या बताऊँ, सब गोटी ही बिगड़ गयी!

घर उजड़ गया। एक दग़ा दे गया, दूसरा जेल में पड़ा करम कूट रहा है। मेरी राम-लछमन, सीता-उर्मिला की जोड़ी ही टूट गयी। मैं बेहाथ-पाँव का हो गया।" कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आते, "अब मेरा वह ज़माना न रहा। खेती-गृहस्थी सब बिखर गयी। कौन वैसा मान-प्रतिष्ठा का आदमी मेरे यहाँ रिश्ता लेकर आएगा, कौन उतना तिलक-दहेज देगा?"

"मन छोटा न करें, बाबूजी, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। देवर आया नहीं कि सँभाल लेगा। सब-कुछ फिर पहले की तरह जम जाएगा। तब तो कितने आकर नाक रगड़ेंगे। आप जरा सब्र से काम लें, बाबूजी! अभी जल्दी भी काहे की है? वह पहले छूटकर तो आए।"

"हाँ बहू, यही सब सोचकर तो किसी को जबान नहीं देता, लेकिन तेरी सास है कि जान खाये जाती है। कहती है, दुहेजू हुआ, ज्यादा मीन-मेख निकालने से काम न चलेगा। उसे जाने काहे की जल्दी है, जैसे हम इतने गये-गुजरे हो गये हैं कि कोई रिश्ता जोड़ने ही हमारे यहाँ न आएगा। कुछ नहीं तो खानदान का मान तो अभी है। नहीं, मैं किसी ऐसी जगह न पड़ूँगा। उसके कहने से क्या होता है?" ससुर अकड़कर बोलते।

उन्हीं दिनों एक दिन शाम को एक अजनबी आदमी ने आकर गाँव की पश्चिमी सीमा के पोखरे के कच्चे चबूतरे पर बैठे हुए लोगों में से एक से पूछा, "गोपी सिंह का मकान किस ओर पड़ेगा।"

गरमी की शाम थी। अँधेरा झुक आया था। आस-पास, घने बागों के होने के कारण वहाँ कुछ गहरा अन्धकार हो गया था। खलिहान से छूटकर किसान यहाँ आकर, नहा धोकर चबूतरे पर बैठ गये थे और दिन-भर का हाल-चाल सुन-सुना रहे थे। कइयों के तन पर भीगे कपड़े थे और कइयों ने अपने भीगे कपड़े पास ही सूखने को पसार दिये थे। कई तो अभी पोखरे में गोता ही लगा रहे थे। उनके खाँसने-खँखारने और "राम-राम" कहने और सीढ़ियों से पानी के हलकोरों के टकराने की आवाज़ें आ रही थीं। बागों से चिड़ियों का कलरव उठ रहा था। हवा बन्द थी। लेकिन पोखरे की दाँती पर फिर भी कुछ तरी थी।

सवाल सुनकर सबकी निगाहें उठ गयीं। पोखरे में पड़े हुओं ने गरदनें बढ़ा-बढ़ाकर देखने की कोशिश की। एक ने तो पूछा कौन है, किसका मकान पूछ रहा है?

अजनबी महज़ एक लुंगी पहने है। शरीर मोटा-तगड़ा है। छाती पर काले घने बालों का साया छा रहा है। गले में काली तिलड़ी है। चेहरा बड़ी-बड़ी मूँछ-दाढ़ी से ढँका है। आँखों में ज़रूर कुछ रोब और गरूर है। सिर के बाल जटा की तरह गरदन तक लटके हुए हैं।

जिससे सवाल पूछा गया था, उसने गोपी के मकान का पता बताकर पूछा, "कहाँ से आना हुआ है?"

"काशीजी से आ रहा हूँ। वहाँ जेल में था।" अजनबी कहकर आगे बढ़ने ही वाला था कि एक आदमी जैसे जल्दी में पूछ बैठा, "अरे भाई, सुना था कि गोपी भी काशीजी के ही जेल में है। वहाँ उससे तुम्हारी भेंट हुई थी क्या?"

अजनबी ठिठक गया। बोला, "हम साथ-ही-साथ थे। उसी का समाचार बताने आया हूँ।"

सुनकर सभी-के-सभी उठकर उसके चारों ओर खड़े हो गये। पोखरे के अन्दर से सभी भीगी देह लिये ही लपक आये। कइयों ने एक साथ ही उत्सुक होकर पूछा, "कहो, भैया, उसका समाचार? अच्छी तरह से तो है वह?"

"हाँ, मज़े में है। किसी बात की चिन्ता नहीं।" कहता हुआ अजनबी आगे बढ़ा, तो सभी उसके साथ हो लिये। जिनके कपड़े फैले हुए थे, उन्होंने उठा लिये। एक दौड़कर आगे समाचार देने चला गया।

"उसकी छाती में चोट लगी थी, भैया, ठीक हो गयी न?"

"हाँ।"

"और भी गाँव के कई आदमी उसके साथ जेल गये थे। कुछ उनका समाचार?

"वे सब वहाँ नहीं हैं। शायद सेण्ट्रल जेल में होंगे।"

"तो तुम दोनों साथ ही रहते थे?"

"हाँ।"

"तुम्हें क्यों जेल हुई थी, भैया? कहाँ के रहने वाले हो तुम?"

"जमींदारों से दीयर की ज़मीन को लेकर झगड़ा हुआ था। तुम लोगों को मालूम नहीं क्या? ढाई-तीन साल पहले की बात है। मटरू पहलवान को तुम नहीं जानते?"

"अरे, मटरू पहलवान?" सभी चकित हो बोल पड़े, "जय गंगाजी!"

"जय गंगाजी!"

"सब मालूम है भैया, सब! उसकी धमक तो कोसों पहुँची थी। तो तुम्हें सज़ा हो गयी थी। कितने साल की?"

"तीन साल की।"

"गोपी की सज़ा तो पाँच साल की थी न? कब तक छूटेगा? बेचारे की घर-गिरस्ती बरबाद हो गयी, जोरू भी मर गयी।"

"क्या?" चकित होकर मटरू बोल पड़ा।

"तुम्हें नहीं मालूम? उसकी जोरू तो साल भीतर ही मर गयी थी। गोपी को किसी ने ख़बर नहीं दी क्या?"

"ख़बर होती तो क्या मुझसे न कहता? यह तो बड़ी बुरी ख़बर सुनायी तुमने।"

"कोई अपने अख्तियार की बात है, भैया? भाई मरा, जोरू मर गयी। बाप को गँठिया ने ऐसा पकड़ लिया है कि मालूम होता है कि दम के साथ ही छोड़ेगा। जवान बेवा अलग कलप रही है। क्या बताया जाए, भैया? गोटी बिगड़ती है, तो अकल काम नहीं करती। एक ज़माना उनका वह था, एक आज यह है! याद आता है, तो कलेजा कचोटने लगता है...इधर से आओ।"

दूर से ही रोने-धोने की आवाज़ आने लगी। माँ-भाभी ख़बर पाते ही रोने लगी थीं। पुरानी बातों को बिसूर-बिसूरकर वे रो रही थीं। सुनकर मुहल्ले की जो औरतें इकट्ठी हुई थीं, उन्हें समझाकर चुप करा रही थीं। बाप किसी तरह उठकर दीवार का सहारा लेकर बैठ गये थे। उनका मन भी चुपके-चुपके रो रहा था।

किसी ने एक खटोला लाकर बूढ़े की चारपाई के पास डाल दिया, किसी ने दीया लाकर ताक पर रख दिया।

मटरू ने बूढ़े के पैर पकडक़र पा लागा। बूढ़े ने गद्गद होकर असीस दिये। फिर पूछा, "मेरा गोपी कैसा है?" और फफक-फफककर रो उठे।

कितने ही लोग वहाँ अपने प्यारे गोपी का समाचार सुनने के लिए आ इकट्ठा हो गये। मटरू जैसे गो-हत्या करके बैठा हो, ऐसा चुप भरा-भरा था। लोग भी आपस में कुछ-न-कुछ कहकर ठण्डी साँसें लेने लगे। कुछ बूढ़े को भी समझाने लगे, "तुम न रोओ, काका! तुम्हारी तबीयत तो ऐसे ही ख़राब है, और ख़राब हो जाएगी। बहुत दिन बीते, थोड़े दिन और बाकी हैं, कट ही जाएँगे। जिन भगवान् ने बुरे दिखाये हैं, वही अच्छे भी दिखाएगा।"

"पानी-वानी तो पिओगे न, भैया?" एक ने पूछा।

"अरे पूछता क्या है? जल्दी गगरा लोटा ला। थका-माँदा है।" एक बूढ़े ने कहा, "हाथ-मुँह धोकर ठण्डा लो, बेटा। आज रात ठहर जाओ। बेचारों को जरा तसल्ली जो जाएगी।"

मटरू के मुँह से बोल न फूट रहा था। वह तो कुछ और सोचकर चला था। उसे क्या मालूम था कि वह कितने ही व्यथा के सोये हुए तारों को छेडने जा रहा है।

धीरे-धीरे काफी देर में व्यथा का उफनता हुआ दरिया शान्त हुआ। एक-एक कर लोग हट गये, तो बूढ़े ने कहा, "बेटा, अब मुँह-हाथ धो ले। तेरा आदर-सत्कार करने वाला यहाँ कोई नहीं है। कुछ ख्याल न करना। तेरी बड़ाई हम सुन चुके हैं। तू समाचार देने आ गया तो हम दुखियों को कुछ सन्तोष हो गया। भगवान् तुझे सुखी रखें!"

हाथ-मुँह धोकर मटरू बैठा, तो अन्दर से माँ ने लाकर गुड़ और दही का शरबत-भरा गिलास उसके सामने रख दिया। मटरू ने उसके भी पैर छुए। बूढ़ी आँचल से बहते हुए आँसुओं को पोंछती वहीं खड़ी हो गयी।

शरबत पीकर मटरू जैसे अपने ही से बोलने लगा, "कोई चिन्ता की बात नहीं है, माई। गोपी बहुत अच्छी तरह है। हम तो एक ही साथ खाते-पीते, सोते-जागते थे। एक ही बात का उसे दुख रहता है कि घर का कोई समाचार नहीं मिलता।"

"क्या करें बेटा? जो आने-जानेवाला था, उसे तो तुम देख ही रहे हो। पहले उसके सास-ससुर चले जाते थे। इधर वे भी मोटा गये हैं। क्या मतलब है उन्हें अब हमसे।" सिसकती हुई ही बूढ़ी बोली।

"अरे, तो चिट्ठी-पतरी तो भेजनी थी?"

"हमें क्या मालूम, बेटा? तो चिट्ठी-पतरी वहाँ जाती है?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं? महीने में एक चिट्ठी तो मिलती ही है।"

"तो कल ही लिखाकर पठवाऊँगी।"

"अब रहने दो। मैं भेजवा दूँगा। तुम लोगों को कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं। हाँ, सुना कि उसकी जोरू भी नहीं रही। उसे तो कोई ख़बर भी नहीं।"

"मैंने ही मना कर दिया था, बेटा! दुख की ख़बर कैसे कहलवाती? वहाँ तो कोई समझाने-बुझानेवाला भी उसे न मिलता।"

"अरे, जोरू का क्या?" बूढ़े बोले, "वह छूटकर तो आये। यहाँ तो कितने ही रोज़ नाक रगडऩे आते हैं। फिर ऐसी बहू ला दूँगा कि..."

"नहीं, काका, अबकी तो उसकी शादी मैं करवाऊँगा। तुम बीमार आदमी आराम करो। मैं सब-कुछ कर लूँगा। उसे आने तो दो। तुम्हें क्या मालूम कि उसे मैं अपने छोटे भाई से भी ज्यादा मानता हूँ। और, काका, वह भी मुझे कम नहीं मानता। हाँ, उसकी भाभी तो अच्छी है? उसे वह बहुत याद करता है।"

दरवाज़े की ओट में खड़ी भाभी सब सुन रही है, यह किसी को मालूम न था।

बूढ़ी बोली, "उसका अब क्या अच्छा और क्या बुरा, बेटा? करम जब दग़ा दे गया तो क्या रह गया उसकी ज़िन्दगी में? जब तक जीएगी, पड़ी रहेगी। उसके भाई-बाप ने भी इधर कोई ख़बर न ली।"

"गोपी को उसकी बहुत चिन्ता रहती है। बेचारा रात-दिन भाभी-भाभी की रट लगाये रहता है। इन दोनों में बहुत मोहब्बत थी क्या?" मटरू ने पूछा।

"अरे बेटा, बहू ऐसी प्राणी है ही। बिल्कुल गऊ!" बूढ़ा बोल पड़ा, "उसी की सेवा पर तो मेरा दम अड़ा है। उसकी सूनी माँग देखकर मेरा कलेजा फटता है। इसी उम्र में ऐसी विपत्ति आ पड़ी बेचारी पर। फिर भी बेटा, मेरे रहते उसे कोई दुख न होने पाएगा। वह मेरी बड़ी बहू है, एक दिन घर की मालकिन बनेगी। वह देवी है, देवी!"

बूढ़ी मन-ही-मन सब सुनकर कुढ़ती रही। जब सहा न गया, तो बोली "खयका तैयार है। अभी खाओगे या..."

नौ

तिरवाही के किसानों में प्राकृतिक रूप से स्वच्छन्दता और साहसिकता होती है। खुले हुए कोसों फैले मैदान, झाऊँ और सरकण्डे के जंगल और नदी से उनका लडक़पन में ही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। निडर होकर जंगलों में गाय-भैंस चराने, घास-लकड़ी काटने, नदी में नहाने, नाव चलाने, अखाड़े में लडऩे, भैंस का दूध पीने से ही उनकी ज़िन्दगी शुरू होती है और इन्हीं के बीच बीत भी जाती है। प्रकृति की गोद में खेलने, साफ हवा में साँस लेने, निर्मल जल पीने, दूध-दही की इफरात और कसरत के शौक के कारण सभी हट्टे-कट्टे, मज़बूत और स्वभाव के अक्खड़ होते हैं। असीम जंगलों और मैदानों का फैलाव इनके दिल-दिमाग में भी जैसे स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता का अबाध भाव बचपन में ही भर देता है। फिर जमींदार की बस्ती वहाँ से कहीं दूर होती है। वहाँ से वे इन पर वह ज़ोर-ज़बरदस्ती, जुल्म-ज्यादती की चाँड़ नहीं चढ़ा पाते, जो आस-पास के किसानों को गुलाम बना देती है। बल्कि इसके विरुद्घ ज़मींदार वहाँ के असामियों से मन-ही-मन डरते हैं। उनकी ताकत, उनके वातावरण उनके अक्खड़पन और मर-मिटने की साहसिकता के आगे, ज़मींदार जानते हैं कि उनका कोई बस नहीं चल सकता। इसी से भरसक वे उनके साथ समझौते से रहते हैं, कहीं कोई ज्यादती भी कर जाते हैं, लगान नहीं देते, या आधा-पौना देते हैं, तो भी नज़रन्दाज कर जाते हैं, उनसे भिडऩे की हिम्मत नहीं करते। पुलिस भी सीधे उनके मुकाबिले में खड़े होने से कतराती है। बहुत हुआ, वह भी जब किसी ज़मींदार ने ज़रूरत से ज्यादा उनकी मुट्ठी गरम कर दी तो पुलिस ने लुक-छिपकर धोखे-धड़ी से एकाध को पकडक़र अपने अस्तित्व का बोध करा दिया। इससे अधिक नहीं।

वे जितने स्वच्छन्द, स्वतन्त्र और ताकतवर होते हैं, उतने ही वज्र मूर्ख भी। बात-बात में लाठी उठा लेना, खून-खच्चर कर देना, एक-दूसरे से लड़ जाना, फसल काट लेना, खलिहान में आग लगा देना या किसी को लूट लेना आये दिन की बातें होती हैं। दिमाग लगाकर, सोच-विचारकर वे कोई मामला तय करना जानते ही नहीं! वे समझते हैं कि हर मजऱ् की दवा लाठी है, बल है। जिधर आगे-आगे कोई भागा, सब उसके पीछे लग जाते हैं। जिनके मुँह से पहली बात निकल गयी, सब उसी को ले उड़ते हैं। कोई तर्क, कोई बहस, कोई बातचीत, कोई सर-समझौता वे नहीं जानते। बात पर अडऩा और जान देकर उसे निबाहना वे जानते हैं। उनके यहाँ अगर किसी बात की कद्र है तो वह है बल की, साहस की, मर मिटने के भाव की। उनका नेता वही हो सकता है, जो सबसे ज्यादा बली हो, दंगल मारा हो, मोर्चे पर आगे-आगे लाठियाँ चलायी हों, भरी नदी को पार कर गया हो, घडिय़ालों को पछाड़ दिया हो, किसी बड़े ज़मींदार से भिड़ गया हो, उसे थप्पड़ मार दिया हो, या सरेआम गाली देकर उसकी इज्ज़त उतार ली हो।

इनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी खेत और बैल-भैंस हैं। ख़ात पर ये जान देते हैं। किसी भी मूल्य पर खेत लेने के लिए तैयार रहते हैं। इनकी इस कमज़ोरी से ज़मींदार अक्सर फायदा उठाते हैं, उन्हें बेवकूफ बनाते हैं। एक बैल या भैंस खरीदनी हुई तो झुण्ड बनाकर, सत्तू-पिसान बाँधकर निकलेंगे। मोल-भाव होगा उसी अक्खड़पन के साथ। जो दाम वे मुनासिब समझेंगे, उसके अलावा कोई और दाम मुनासिब हो ही कैसे सकता है? वे अड़ जाएँगे, धरना दे देंगे, धमकाएँगे, लाठियाँ चमकाएँगे। बेचनेवाला मान गया, तो ठीक। वरना रात-बिरात वे उसे खूँटे से खोलकर तिड़ी कर देंगे और दीयर के जंगल में उसे कहीं छिपाकर अपनी बहादुरी का बखान सुनेंगे और करेंगे। वहाँ यह काम किसी भी दृष्टि से ख़राब नहीं समझा जाता।

मटरू ने जब उन्हें दीयर के खेतों के बारे में समझाया था, तो चूँकि यह एक पहलवान, बहादुर, निडर और "गंगा मैया" के भक्त की बात थी, वे मौन हो गये थे। फिर मटरू के जेल चले जाने के बाद ज़मींदारों की दूसरी बातें उनकी समझ में कैसी आती? यहाँ तक कि ज़मींदारों ने उन्हें लालच दिया कि वे जहाँ चाहें, खेती करें और कुछ न दें। फिर भी वे नकर गये। सबकी अब एक ही रट थी कि मटरू पहलवान जब लौटकर आएगा, वह जैसा कहेगा वैसा ही होगा। उसके आने के पहले कुछ नहीं।

पूजन ने भी चाहा था कि मटरू का काम जारी रखे। लेकिन मटरू की तरह उसमें हिम्मत और ताकत न थी कि वह अकेले झोंपड़ी खड़ी कर नदी के तीर पर जंगलों के बीच, ज़मींदारों से दुश्मनी बेसहकर रहे और खेती करे। इसलिए उसने कोशिश की दस-बीस किसान और उसके साथ तीर पर रहने, खेती करने के लिए तैयार हो जाएँ। लेकिन मटरू के नाम पर ही तैयार न हुए थे। जैसे एक सियार बोलता है, तो सब सियार उसकी ही धुन में बोलने लगते हैं, उसी तरह मटरू के आने के पहले इस दिशा में वे कोई कदम उठाने के लिए तैयार न थे।

मजबूर होकर, अपना दबदबा कायम रखने के लिए तब ज़मींदारों ने खुद वहीं अपनी खेती का सिलसिला कायम किया था। यह काम कुछ-कुछ बाघ के मुँह में हाथ डालने के ही बराबर था। साधारणत: वे ऐसा कभी न करते। लेकिन अब परिस्थिति ही ऐसी आ पड़ी थी। वे कुछ न करते तो यह अन्देशा था कि दीयर में उनके दब जाने की बात उठ जाती और किरकिरी हो जाती। फिर सारा खेल चौपट हो जाता। सब किये-धरे पर पानी फिर जाता। सो, उन्होंने वहाँ अपनी झोंपड़ी खड़ी करवायी। अपने आदमी और हल भिजवाकर जोतवाया-बोवाया और तनखाह पर कुछ मजबूत आदमियों को रखवाली के लिए वहाँ रखा। फिर भी वे जानते थे कि जब तक तिरवाही के किसानों से उनका व्यवहार ठीक न रहेगा, तब तक कुछ बचना मुश्किल है। उन्होंने पहले भी

कोशिश की थी कि कम-से-कम रखवाली का जिम्मा वहाँ का ही कोई आदमी ले ले, लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ था। इस तरह ज़मींदारों को काफी खर्च करना पड़ा। यहाँ तक कि अगर फसल कटकर सही-सलामत घर आ जाए, तो भी उसका दाम खर्च से कम ही हो। फिर भी उन्होंने वैसा ही किया। दबदबा कायम रखना ज़रूरी था। दबदबा न रहा तो ज़मींदारी कैसे रह सकती है?

फसल उगी, बढ़ी और देखते-देखते ही छाती-भर खड़ी हो लहरा उठी। तिरवाही के किसानों ने देखा, तो उनकी छातियों पर साँप लोट गये। उन्हें ऐसा लगा, जैसे किसी ने उनके अपने खेत पर ही कब्जा करके यह फसल बोयी हो, जैसे उनके घर से ही कोई अनाज की बोरियाँ उठाये ले जा रहा हो; और वे विवश होकर बस देखते ही जा रहे हों।

ऐसे मौके का फायदा पूजन ने उठाया। मटरू के साथ सम्बन्ध होने के कारण उसका मान आख़िर कुछ किसानों में हो ही गया था। उसने चुपके-चुपके किसानों में बात छेड़ दी, "बाहर के आदमी हमारी आँखों के ही सामने हमारी गंगा मैया की धरती से फसल काट ले जाएँ! डूब मरने की जगह है! और याद रखो, अगर एक बार भी फसल कटकर ज़मींदारों के घर पहुँच गयी, तो उनका दिमाग चढ़ जाएगा! मटरू पाहुन के आने में अभी सालों की देर है। तब तक यह सारी धरती उनके कब्जे में ही चली जाएगी। आदमी के खून का चस्का लग जाने पर घडिय़ाल की जो हालत होती है, वही ज़मींदारों की होगी। तुम लोग तब मटरू-मटरू की रट लगाते रहोगे और कुछ न होगा। वैसे मौके पर मटरू ही आकर क्या कर लेंगे? जरा तुम लोग भी तो सोचो। तुम इतना तो कर सकते हो कि फसल ज़मींदारों के घर में न जाने पाए।"

यह किसानों के मन की बात थी। पूजन की बात उनके मन में उतर गयी। कई जवानों ने पूजन का साथ देने का वाद किया। सब तैयारियाँ हो गयीं। और जब फसल तैयार हुई, तो एक रात कटकर, नावों पर लदकर पार पहुँच गयी। रखवाले दुम दबाकर भाग खड़े हुए। जान देने की बेवकूफी वे ज़मींदारों के लिए क्यों करते?

दूसरे दिन एक शोर उठा। एकाध लाल-पगड़ी भी मुखिया के यहाँ दिखाई दी और फिर सब-कुछ शान्त हो गया। कहीं से कोई सुराग कैसे मिलता? सब किसानों की छाती ठण्डी हुई थी। कह दिया कि काटने वाले, हो-न-हो पार से आये होंगे। नदी किनारे कई जगह डाँठ पड़े हुए मिले हैं। रात-ही-रात लाद-लूदकर चम्पत हो गये। उनको तो ख़बर तक न लगी। लगी होती, तो एकाध लाठी तो बज ही जाती।

जवानों का मन बढ़ गया। झाऊँ और सरकण्डों के जंगलों पर भी उन्होंने रात-बिरात हाथ साफ करना शुरू कर दिया और कहीं-कहीं तो महज दिल की जलन शान्त करने के लिए आग भी लगा दी।

ज़मींदार सुनते और ऐंठकर रह जाते। बेबसी से तो उनका कभी पाला ही न पड़ा था। एक बार पुलिस की मुट्ठी गरम करने का जो आख़िरी नतीजा हुआ था, उन्होंने देख लिया था। अब फिर उसे दुहराकर कोई फायदा कैसे देखते?

अब पूजन का मान वहाँ बढ़ गया। लेकिन पूजन भी इससे ज्यादा कुछ न कर सका। ज़मींदार भी चुप्पी साध गये। उन्होंने सोचा कि छेड़ने से कोई फायदा नहीं होने का। अगर वे शान्त रहे तो सम्भव है कि किसान भी शान्त हो जाएँ और फिर पहले ही जैसे हालत सुधर जाए। उनकी ओर से कोई पहल-कदमी न देखकर किसान भी उदासीन हो मटरू का इन्तज़ार करने लगे। वही आए तो आगे कुछ किया जाए। यों उस साल के बाद वहाँ कोई उल्लेखनीय घटना न घटी।

गोपी के घर मटरू का वह समय बड़ी बेकली से कटा। स्टेशन पर मटरू की गाड़ी तीसरे पहर पहुँची थी। वहाँ से उसका दीयर दस कोस पर था। एक छन भी रास्ते में वह न कहीं रुका, न सुस्ताया। भूत की तरह चलता रहा। गंगा मैया की लहरें उसे उसी तरह अपनी ओर खींच रही थीं जैसे कई सालों से बिछुड़े परदेशी को उसकी प्रियतमा। वह भागम-भाग जल्दी-से-जल्दी गंगा मैया की गोद में पहुँच जाना चाहता था। ओह, कितने दिन हो गये! वह हवा, वह पानी, वह मिट्टी, वह गंगा मैया काश, उसके पंख होते!

रास्ते में ही गोपी का घर पड़ता था। सोचा था कि पाँच छन में सर-समाचार ले देकर, वह फिर भाग खड़ा होगा और घड़ी-दो-घड़ी रात बीतते गंगा मैया का कछार पकड़ लेगा। लेकिन गोपी के घर ऐसी स्थिति से उसका पाला पड़ गया कि उसे रुक जाना पड़ा। उन दुखी प्राणियों को छोड़कर भाग खड़ा होना कोई आसान काम न था। मन छन-छन कचोट रहा था, लेकिन न रुक सकने की बात उसके मुँह से न निकली। उनके आदर-सत्कार को इनकार कर, उनके दुखी दिलों को चोट पहुँचाए ऐसा दिल मटरू के पास कहाँ था?

खा-पीकर गोपी की माँ और बाप के साथ बड़ी रात गये तक बातचीत चलती रही। आख़िर जब वे थक गये, माँ सोने चली गयी और बूढ़े खर्राटे लेने लगे, तो मटरू ने सोने की कोशिश की। मगर नींद कहाँ? दिल-दिमाग उसी दीयर में भटकने लगे। वह नदी, वह जंगल, वह हवा-मिट्टी जैसे सब वहाँ बाँह फैलाये खड़े मटरू को गोद में भर लेने

को तड़प रहे हैं और मटरू है कि इतने नजदीक आकर भी सबको भुलाकर यहाँ पड़ा हुआ है। "आओ, आओ! दौडक़र चले आओ बेटा! कितने दिनों से हम तुमसे बिछुडक़र तड़प रहे हैं! आओ, जल्द आकर हमारे कलेजे से चिपक जाओ! आओ! आओ!" और इस "ओ" की पुकार इतनी ऊँची और लम्बी होकर मटरू के कानों से गूँज उठी कि उसका रोम-रोम तड़प उठा। वह व्याकुल होकर उठ बैठा। आँखें फाडक़र चारों ओर से ऐसा देखा कि कहीं यह पुकार पास से ही तो नहीं आयी है, कहीं यह जानकर कि मटरू पास आकर यों पड़ा हुआ है, गंगा मैया खुद ही तो नहीं चली आयीं?

मटरू उठ खड़ा हुआ और ऐसे भाग चला, जैसे उसे डर हो कि फिर कहीं कोई उसे पकडक़र न बैठा ले। चारों ओर घना सन्नाटा और अन्धकार छाया था। कहीं कुछ सूझ न रहा था। फिर भी मटरू के पैरों को यह अच्छी तरह मालूम था कि उसकी गंगा मैया तक पहुँचने की दिशा कौन-सी है। फिर उन फौलादी पैरों के लिए रास्ता बना लेना क्या मुश्किल बात थी?

कटे हुए खेतों से सीधा मटरू बेतहाशा भागा जा रहा था? एक क्षण की देर भी अब उसे सह्य न थी। पैरों में खुरकुची गड़ रही है, कहीं कुछ दिखाई नहीं देता, होश-हवाश ठिकाने नहीं है। फिर भी वह भागा जा रहा है। आँखों के सामने बस गंगा मैया की धारा चमक रही है, मन बस एक ही बात की रट लगाये हुए है-आ गया, माँ, आ गया!

नींद से भरी धरती गरम-गरम साँस ले रही है। अन्धकार की सेज पर हवा सो गयी है। गर्मी से परेशान रात जैसे रह-रहकर जम्हुआई ले रही है। उमस-भरा-सन्नाटा ऊँघ रहा है- और आत्मा में मिलन की तड़प लिये मटरू भागा जा रहा है। पसीने के धार शरीर से बह रहे हैं। भीगी आँखों के सामने अन्धकार में गंगा मैया की लहरें बाँह फैलाये उसे अपने गोद में समा लेने को बढ़ी आ रही हैं। ऊपर से तारे पलकें झपकाते यह देख रहे हैं। लेकिन मटरू गंगा मैया के सिवा कुछ नहीं देख रहा है। उसके कानों में माँ की पुकार गूँज रही है। उसके प्राण जल्द-से-जल्द माँ की गोद तक पहुँच जाने को तड़प रहे हैं। वह भागा जा रहा है, भागा जा रहा है...

यह दीयर की हवा की खुशबू है। यह दीयर की मिट्टी की खुशबू है। यह गंगा मैया के आँचल की खुशबू है। मटरू के प्राण उन्मत्त हो उठे। रोम-रोम उत्फुल्ल हो कण्टकित हो गये। उसके पैरों में बिजली भर गयी। वह आँधी की तरह पुकारता दौड़ा, "माँ! माँ!" लहरों की प्रतिध्वनि हुई, "बेटा! बेटा!"

दिशाओं ने प्रतिध्वनि की, "बेटा! बेटा!"

धरती पुकार उठी, "बेटा! बेटा!"

आकाश और धरती जैसे करोड़ों विह्वल माँओं और बेटों की पुकारों से गूँज उठे, जैसे दसों दिशाएँ पुकारती हुई दौडक़र मटरू के गले से लिपट गयीं। मटरू एक भूखे बच्चे की तरह छछाकर, गंगा मैया की गोद में कूद पड़ा। गंगा मैया ने बेटे को अपनी गोद में ऐसे कस लिया, जैसे अपने तन-मन-प्राण में ही उसे समोकर दम लेगी। यह कल-कल के स्वर नहीं, माँ की पुचकारों और चुम्बनों के शब्द हैं। दिशाएँ झूम रही हैं। हवा गुनगुना रही है। मिट्टी खिलखिला रही है-"आ गया! हमारा बेटा आ गया! हमारा लाडला आ गया!"

'

गंगा मैया भाग 3 - ganga Maiya Part 3

1. गंगा मैया भाग 1
2. गंगा मैया भाग 2
3. गंगा मैया भाग 3
4. गंगा मैया भाग 4
5. गंगा मैया भाग 5
6. गंगा मैया भाग 6